



CHETANA  
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)

Peer Reviewed/Refereed Journal  
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))

Impact Factor  
SJIF 2023 - 7.286



Prof. A.P. Sharma  
Founder Editor, CIJE  
(25.12.1932 - 09.01.2019)

## आदमीयत की सही मंजिल का संधान करती कहानियाँ

सुनीता कुमारी, सह-आचार्य

डॉ. सिद्धि जोशी, सह-आचार्य

राजकीय कन्या महाविद्यालय झुंझुन्

Email-babal.sunita77@gmail.com, M0b.- 9414853636

Email- dr.joshisiddhi50@gmail.com, Mob.- 9928107420

First draft received: 17.03.2024, Reviewed: 25.03.2024, Final proof received: 27.03.2024, Accepted: 31.03.2024

### सार संक्षेप

दलित साहित्य, हिन्दी में विचार की जमीन पर जितना प्रखर और मुखर है, रचनात्मक धरातल पर उसकी उपलब्धियाँ अभी उतनी उल्लेखनीय नहीं हैं, जैसी कि वे मराठी में हैं। बावजूद इसके, अल्प समयावधि में भी, दलित रचनाशीलता में उपर्युक्त कथन के कुछ ऐसे सशक्त अपवाद भी सामने आये हैं जो दलित रचनाशीलता के सभावनापूर्ण भविष्य के प्रति हमें आश्चस्त करते हैं। मसलन हिन्दी में दलित आत्मकथाएँ मराठी की तुलना में परिमाण में अल्प हैं परन्तु जो हैं उनमें स्वानुभूत जीवन का यथार्थ उसी बेधकता के साथ सामने आया है, जैसा मराठी की दलित आत्मकथाओं में। इसी प्रकार कहानियों के क्षेत्र में दलित जीवन सन्दर्भों को लेकर लिखी गई ऐसी बहुत सी कहानियाँ हैं जो कहानी के रचना विधान की किसी भी कसौटी पर, अन्तर्वस्तु, संवेदना और शिल्प के हर आयाम पर कहानी की यथार्थवादी परम्परा को नई समृद्धि प्रदान करती हैं। इन कहानियों के जरिये दलित जीवन के कुछ ऐसे पहलू पहली बार उजागर हुए हैं जो अब तक नितांत अनदेखे और अनछुए थे। अल्प अवधि के इस दलित लेखन में जिन कुछ लोगों ने दलित रचनाशीलता और हिन्दी की वृहत्तर सर्जना में अपनी खास पहचान बनाई है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम सहज ही सबसे उपर है।

**मुख्य शब्द** : दलित साहित्य, यथार्थवादी परम्परा आदि.

### प्रस्तावना

दलित साहित्य, हिन्दी में विचार की जमीन पर जितना प्रखर और मुखर है, रचनात्मक धरातल पर उसकी उपलब्धियाँ अभी उतनी उल्लेखनीय नहीं हैं, जैसी कि वे मराठी में हैं। बावजूद इसके, अल्प समयावधि में भी, दलित रचनाशीलता में उपर्युक्त कथन के कुछ ऐसे सशक्त अपवाद भी सामने आये हैं जो दलित रचनाशीलता के सभावनापूर्ण भविष्य के प्रति हमें आश्चस्त करते हैं। मसलन हिन्दी में दलित आत्मकथाएँ मराठी की तुलना में परिमाण में अल्प हैं परन्तु जो हैं उनमें स्वानुभूत जीवन का यथार्थ उसी बेधकता के साथ सामने आया है, जैसा मराठी की दलित आत्मकथाओं में। इसी प्रकार कहानियों के क्षेत्र में दलित जीवन सन्दर्भों को लेकर लिखी गई ऐसी बहुत सी कहानियाँ हैं जो कहानी के रचना विधान की किसी भी कसौटी पर, अन्तर्वस्तु, संवेदना और शिल्प के हर आयाम पर कहानी की यथार्थवादी परम्परा को नई समृद्धि प्रदान करती हैं। इन कहानियों के जरिये दलित जीवन के कुछ ऐसे पहलू पहली बार उजागर हुए हैं जो अब तक नितांत अनदेखे और अनछुए थे। अल्प अवधि के इस दलित लेखन में जिन कुछ लोगों ने दलित रचनाशीलता और हिन्दी की वृहत्तर सर्जना में अपनी खास पहचान बनाई है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम सहज ही सबसे उपर है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित लेखन में अपनी यह पहचान अपने रचनात्मक लेखन के जरिए ही नहीं बनाई, जिसमें उनकी आत्मकथा, उनकी कहानियाँ और उनकी कविताएँ शामिल हैं, अपने विचारालम्बक लेखन के जरिए भी बनाई हैं जिसमें उनकी दलित लेखन को लेकर हुए दूसरे लेखकों से विमर्श की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस विमर्श में उनकी हिस्सेदारी का वैशिष्ट्य इस बात में है कि विचार की अपनी जमीन पर मजबूती के साथ खड़े रहकर भी उनमें प्रतिपक्ष के विचारों को सुनने और तर्क की जमीन पर उचित स्वीकार करने का मादा भी है। वे प्रतिपक्ष से संवाद करते हैं, वितंडा नहीं।

वस्तुतः संवाद की सही जमीन भी यही है। उनकी कवितायें भी आवेग, आवेश, लयफाजी और कोरी प्रतिक्रिया से अलग, अनुभूति की बुनियादी पर रची गई कविताएँ हैं। स्फूर्ति न होकर वे भावसंकुल हैं। 'जुटन' शीर्षक से उनकी आत्मकथा भी प्रकाशित हुई है। इस आत्मकथा में कुलीन और सुविधा सम्पन्न जीवन के रंग और रोमान नहीं, उनसे जुड़ा उल्लास और अवसाद भी नहीं, एक पूरी की पूरी नरक यात्रा तथा उससे जुड़ी अनुभूतियाँ और उसके वे पड़ाव हैं जिन्हें पार करते हुए उम्र के इस दौर तक इस यात्रा में पहुँचे हैं। उनका यह कहना सच है कि इसे लिखने में उन्हें एक बार फिर से उन सारे कष्टों, यातनाओं, प्रताडनाओं को जीना पड़ा जो उनके अपने जीवन का हिस्सा थी। सचमुच यदि वे इन अनुभवों को लिपिबद्ध न करते तो शायद वे अनबाँचे ही रह जाते।

विडंबना यह है कि यह नरक यात्रा उनकी या उन जैसे करोड़ों करोड़ के अपने किए धरे का प्रतिफल न होकर एक निहायत संकीर्ण मानसिकता के तहत, एक नियति के रूप में उन सबके लिए लिख दी गई वह नरक-यात्रा रही है और है, अभिजात सवर्ण मानसिकता उसके धर्म और धर्मशास्त्र जिसे सही मानते हैं और जिसे सनातन बनाए रखना चाहते हैं। आदमी और आदमी में भेद करने वाली यह मानसिकता सन्मुख कितनी क्रूर, अमानवीय, बर्बर, हिंसा और गलीच है, ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा उसका खुलासा करती है। संप्रति, हमारी चर्चा के केन्द्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ हैं जो उनके सलाम शीर्षक कहानी संकलन में संकलित होकर सामने आई हैं। हम अपने को उन्हीं पर केन्द्रित करेंगे। जाहिर है कि कहानियाँ दलित जीवन सन्दर्भों से जुड़ी कहानियाँ हैं जिनमें दलित जीवन के सुख-दुख, कष्ट-क्लेश, उपेक्षा-प्रतानडनाएँ, कुटा, घुटन तथा कुछ सपने तथा उनके लिए किये गये संघर्ष को उजागर किया गया है। यह सब संदर्भों से दलित जीवन का यथार्थ रहा है जिसे ओमप्रकाश वाल्मीकि ने निहायत संजीदगी से यथार्थ के प्रति प्रायः वस्तुनिष्ठ रहते हुए, कहानी के रचना-विधान की संगति में दृष्टिकोण के समूचे खुलेपन के साथ विचित्र और रूपादित किया है।

वे शक्तिशाली और चेहरे भी इस क्रम में बेनकाब हुए हैं दलित जीवन की इस समूची यातना के स्त्रोत और निमित्त रहे हैं। ये बड़ी साफ-सुथरी किन्तु बेधक और मार्मिक कहानियाँ हैं। ऐसे अनेक पात्र भी इन कहानियों में आए हैं जो दलित न होते हुए भी दलितों के संघर्ष में उनके साथ हैं। दृष्टि के इस खुलेपन ने कहानियों को यथार्थ की विश्वसनीयता तो दी है, एक मानवीय जीवन के लिए दलितों का यह संघर्ष सफल हो, संघर्ष की सही जमीन और मानसिकता के लिए भी सही पेशकश की है। जैसा हमने कहा है, ओमप्रकाश वाल्मीकि भले अपने को दलित लेखन के दायरे में रखें, उनकी कहानियों में उनकी रचना सामर्थ्य और उनकी सोच के जो पहलू उभरे हैं वे उन्हें हिन्दी की यथार्थवादी कहानी - परम्परा के दायरे के एक क्षमतावान लेखक के रूप में हमसे मुखातिब करते हैं।

आइए, संकलन की कुछेक कहानियों के भीतर गुजरते हुए हम ओमप्रकाश वाल्मीकि के कहानीकार से अन्तरंग परिचय प्राप्त करें।

संकलन की पहली कहानी 'सलाम' है जिसके आधार पर ही संकलन का नामकरण भी हुआ। सवर्णों के गांव में पहुंची दलितों (संगी जाति) की एक बारात के निहायत स्वाभाविक और यथार्थ वातावरण में सवर्ण मानसिकता के टुट्टपन को प्रसंगतः उभारते हुए इस कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने मुख्यतः यह दिखाया चाहा है कि समय के बदले हुए सन्दर्भ में नई पीढ़ी के शिक्षित और प्रबुद्ध नवयुवक किस प्रकार अपने सदियों से चली आ रही रूढ़ि प्रथाओं के न केवल खिलाफ हैं, अपने इन संकल्पों की खातिर जोखिम उठाने को भी तैयार हैं।

कहानी का मुख्य पात्र हरीश बड़े बुजुर्गों की नसीहत, आसन विपत्ति की संभावनाओं और दुष्परिणामों के बावजूद विवाह के अक्सर पर सवर्णों के घर जा-जाकर सलाही देने और बख्शीश पाने की सदियों से चली आ रही प्रथा की खिलाफत करता है और अंत तक अपने निर्णय पर दृढ़ रहता है।

दलितों की अपनी अस्मिता और स्वाभिमान के इस प्रकरण को साथ ही नई पीढ़ी के चेतनागम बदलाव को, बिना किसी आरोपण के बड़े सहज ढंग से स्थितियों के बीच ओमप्रकाश वाल्मीकि वस्तुगत यथार्थ की संगमि में जिन रचनात्मक कौशल के साथ कहानी को इस बिन्दु तक लाए हैं, वह उनके कहानीकार की ताकत और समझ का साक्ष्य है।

वस्तुतः कहानी को इसी बिन्दु पर समाप्त हो जाना चाहिए था। परन्तु वह इसी बिन्दु पर एक अप्रत्याशित मोड़ लेती है और एक तरह के 'एण्टी - क्लाइमेक्स' को रचते हुए दलित-जीवन संदर्भों का अतिक्रमण करते हुए आदमीयत के एक बड़े दायरे में पहुंचकर हमारी समूची आज की मानसिकता पर हमारी आदमीयत पर सवाल उठाती है। क्या हो गया है हमारी सोच को, कौन-सा ग्रहण लग गया है उस पर कि हम आदमी को आदमी के रूप में न देखकर उसे छूत-अछूत, हिन्दु-मुसलमान, ब्राह्मण - टाकुर न जाने किन-किन रूपों में देखते और पहचानते हैं और यही संस्कार और सोच जन्म से अपनी संतानों को भी देते हैं। वर्ण, वर्ण, धर्म नस्ल, सम्प्रदाय से परे आदमी, हमें क्यों न दिखाई देता? कहानी का यह अप्रत्याशित नया विधान उसे एक बड़े सवाल से, आदमीयत की शिनाख्त के सवाल से जोड़ते हुए न केवल ऐसे एक नई अर्थवत्ता और बड़ा आशय देता है, ओमप्रकाश वाल्मीकि कि अपनी सोच के एक खुबसूरत पहलू से भी हमें मुखातिब करता है। द्रष्टव्य है कि जिस समय वर-वधू पक्ष इस चिन्ता में हैं कि जल्द से जल्द बारात विदा होकर गांव की सीमा से बाहर हो जाए, बारात के एक बुजुर्ग अपने बच्चे से शीघ्र खाना खाने का आग्रह करते हैं और मासूम-सा वह बच्चा हटपूर्वक खाने से यह कहते हुए इंकार करता है कि वह मुसलमान के हाथ की बनाई रोटी नहीं खाएगा।

यह समझने के बावजूद कि रोटी हिन्दु की बनाई हुई है, वह बराबर अपनी जिद पर अड़ा रहता है - 'मैं नहीं खाऊंगा उसके हाथ की बनी रोटी'। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी इसी बिन्दु पर यह कहते हुए खत्म की है कि कमल और हरीश फटी-फटी आँखों से उस लड़के को देख रहे थे। कुछ देर पहले जना आत्मविश्वास लड़के की आवाज में दबने लगा था। कमल और हरीश दोनों खामोशी के अंधेरे जंगल में भटक गए थे। कहानी की व्यंजना यही है कि आदमीयत की सही मंजिल तक की यात्रा सचमुच कितनी कठिन है। न जाने कितने अवरोध हैं जिन्हें पार करना होगा। सदियों के संस्कार, सदियों की रूढ़ सोच, इन सबका गलना टूटना बड़े धैर्य, संयम और कठिन संकल्प की अपेक्षा रखता है। कहानी का यह अन्त हताशा या निराशा का सूचक नहीं एक बेवैनी जरूर उपजाता है, संजीदगी के साथ संघर्ष को जारी रखने की जरूरत पर बल देता है।

कमल ने ब्राह्मण होकर भी हरीश से बचपन की उम्र से अपनी दोस्ती निबाही थी, अपने घर-परिवार के विरोध के बावजूद। हरीश ने भी उसके साथ भाई-चारा जोड़ा था। एक अप्रत्याशित प्रसंग दोनों के उपजे आत्मविश्वास की लौ को कंपा देता है और वास्तविकता का एक नया पहलू उनके सामने चुनौती के रूप में पेश कर देता है। कहानी इसी नाते इकट्ठी बुनावट की नहीं, सरिलपट बुनावट वाली बन गई है - एक महत्वपूर्ण कहानी का दर्जा पा सकी है।

'सपना' कहानी हिन्दु धर्म की बहुदेववादी आस्थाओं की व्यंग्यात्मक प्रस्तुति के साथ दलितों के प्रति सवर्णों के भेदभाव को भी एक विशिष्ट संदर्भ में उजागर करती है। यहां भी दलितों के साथ किये जा रहे भेदभाव का प्रतिपादन एक सवर्ण ब्राह्मण ऋषिगण के द्वारा होता है जो आवेश में अति नाटकीय तरीके से मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के लिए हो रहे सारे समारोह को अस्त-व्यस्त कर देता है। कहानी में ऋषि के व्यवहार की यह अति नाटकीयता, प्रसंगमिंत भले हो, कहानी को कमजोर करती है।

'बैल की खाल' कहानी मरे जानवरों की खाल निकालने वाले काले और भूरे, दो व्यक्तियों के चरित्र के मानवीय पहलू को उजागर करने वाली कहानी है, साथ ही उन तमाम लोगों की सोच और मानसिकता पर एक कहरा व्यंग्य भी है, जिनके लिए वे समाज के सबसे अग्र, उन्मत्त और अपवित्र प्राणी हैं। भूख के लम्बे दौर झेलने के क्रम में उन्हें पं. विरिजमोहन के मरे बैल की सूचना शुभ संवाद की तरह मिलती है। उसकी खाल उतारकर वे शहर के बाजार में व्यापारी को देने के लिए बस या किसी वाहन की जुगाड़ में सड़क पर बैठे हैं। उन्हें मय कि ज्यादा समय बीतने पर यदि खाल गंधाने लगी, उन्हें कुछ भी नहीं मिलेगा और उनकी सारी मेहनत अकार्य जायेगी। वाहन निकलते हैं परन्तु खाल के साथ उन्हें बिलानों को कोई तैयार नहीं होता। ऐसे ही क्षण अस्मात् एक रेवड की बछड़ी एक ट्रक की चपेट में आकर, घायल, सड़क पर छटपटाने लगी है। भूरा झाड़वर को गाली देता हुआ ट्रक की तरफ दौड़ता है। बछड़ी के लिए कभी पानी की खोज में जाता है, कभी गांव के डॉक्टर को लाने अन्ततः बछड़ी का दम तोड़ देना उन्हें भीतर तक आहत कर देता है।

बैल की अपनी कमाई खाल को, जो अब गंधाने लगी थी, वहीं छोड़ काला गांव की ओर चल देता है, गांव वालों को बछड़ी के इस तरह मरने की खबर देने। तथाकथित तिरस्कृत और अधम काले और भूरे की तुलना में शहर का लाला जो जिन्दा जानवरों को मारने के लिए जहर की पुड़िया देने की बात करता है। काले और भूरे के लिए जो राक्षस से कम नहीं है। तथाकथित बड़ों के घटियापन और तथाकथित छोटों के बड़पन को उजागर करने वाली यह प्रेमचन्द की परम्परा है, जिसकी कड़ी के रूप में यह कहानी अपनी मानवीय संवेदना में महत्वपूर्ण हो उठी है। 'अधड़' कहानी दलित जाति में पैदा होने से उपजी हीनता ग्रंथि, फलतः जाति छिपा कर समाज में सम्मानित जीवन जीने का छद्म पालने वाले उन लोगों की मानसिकता पर गहरा कटाक्ष करती जो इस छद्म को वास्तविक मानकर पुराने जीवन की याद तक को गुनाह समझते हैं।

सुकड़लाला से एस.लाल बने श्री लाल ऐसे लोगों के ही प्रतिनिधि हैं। देश के जाने माने वैज्ञानिक बनकर अपने छद्म उच्च मध्यवर्गीय जीवन की रीतियों में वे इतने रम गए हैं कि उन जिन्दगी की याद से भी रोमांच होता है, जो कभी उनका हिस्सा थी। शुरुआती दौर में उनकी पत्नी ने जरूर उन्हें झंझोड़ना चाहा था, परन्तु पुण्य मानसिकता और उनके हठी स्वभाव से हारकर अन्ततः उसे स्थिति से समझौता करना पड़ा था। विवाह के उपरान्त वह कभी अपने मायके नहीं गई और न ही कभी वहां जाने का नाम भी लिया। पब्लिक स्कूल में पढ़ रहे बेटे स्वीट और बेटे पिंकी को तो अपने मूल का मान भी नहीं लगाने दिया था उन्होंने।

कहानी प्रारम्भ होती है, मि. लाल की पत्नी सविता को अपनी चचेरी बहन बीना की लिखी उस चिट्ठी से जिसमें उसने अपने पिता दीपचन्द की मृत्यु का समाचार उसे दिया था। इन्हीं दीपचन्द ने सुकड़लाल को पढ़ाया लिखाया था, जिसके चलते वे मि.लाल बन सके। इन्हीं ने इनका विवाह सविता से कराया था और इन्हीं को मि.लाल अपनी स्मृतियों से पूरी तरह निकाल चुके थे। बड़े अन्धमनस्क भाव से कराया था और इन्हीं को मि.लाल अपनी स्मृतियों से पूरी तरह निकाल चुके थे। बड़े अन्धमनस्क भाव से

सविता पति को वह चिट्ठी दिखाती है। उसे आश्चर्य होता है कि पुराने जीवन को एकदम मुला चुके मि.लाल ने केवल समाचार से मर्माहत होते हैं वे देहरादून जाकर दीपचन्द के परिवार जनों से मिलकर उनके दुख में सहभागी बनने की बात भी करते हैं। दीपचन्द के सारे अहसान न जाने क्यों उनको याद हो उठते हैं। बावजूद इसके सविता अपनी मनोव्यथा और मि.लाल के पुराने व्यवहार के चलते खुद देहरादून जाने से इंकार करती है। अप्रत्याशित रूप से अपनी किशोरी बेटे पिंकी को लेकर मि. लाल देहरादून जाते हैं जिस दुनिया से पिंकी का कोई परिचय नहीं था।

वह उस दुनिया में प्रवेश करती है। उसे जब यह पता चलता है कि यह उसी की दुनिया है और जिन लोगों के सामने वह है, वे उसी के मामा, नाना आदि हैं, बहर तल्ल प्रतिक्रिया उसमें होती है और वह उस दुनिया से एकदम बाहर निकलना चाहती है।

पिंकी की प्रतिक्रिया को स्वाभाविक मानकर मि. लाल उसे समझाते हैं और उन्हें आश्चर्य होता है कि पिंकी न केवल उनकी बात समझ जाती है, अपने पिता को लांछित भी करती है कि अब तक उन्होंने उसे अंधेरे में क्यों रखा और अपने लोगों के प्रति वे इतने निर्मम और उदासीन क्यों रहे? पिंकी की सोच का यह बदलाव मि.लाल के लिए एक सुखद आश्चर्य बनता है। पिंकी अपनी सही दुनिया में रहने और जीने की मानसिकता पा चुकी थी। कहानी इसी बिन्दु पर समाप्त होती है।

कहानी की परिसमाप्ति जिस बिन्दु पर हुई है, वह कितना ही जायज, काम्य और सही क्यों न हो, मि.लाल खासतौर से पिंकी की मानसिकता में आए बदलाव को जिस अप्रत्याशित रूप में यक-बन्धक कहानी में दिखाया गया है, वह मनोवैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता, आरोपित और यथार्थ पर लेखक की मनोकांक्षा का दबाव अधिक मालुम देता है। मि. लाल के मानस पर भले ही पूर्ववर्ती जीवन और उन पर किए गए अहसानों के अवशेष दस्तक दे रहे हों, उनकी पुरानी दुनिया से पिंकी का सम्पूर्ण अपरिचय उसकी अपनी मन स्थिति में आए इस बदलाव से नहीं जुड़ पाता।

कहानी का यह बिन्दु अस्वाभाविक न बनता यदि लेखक ने कहानी की अन्तर्वस्तु में कुछ ऐसे सूत्र पहले से चुने होते जो इस बदलाव का निमित्त होते, परन्तु ऐसा नहीं है। लेखक की किसी सही निष्कर्ष पर पहुंचने की हड़बड़ी ने कहानी को यथार्थ और मनोविज्ञान दोनों आयामों पर कमजोर ही किया है।

जिनावर संकलन की एक अत्यन्त मार्मिक, मानवीय संवेदना से सराबोर बड़े त्रासद अहसासों की कहानी है जो बड़ी संजीदगी, संयम और बड़े रचनात्मक कौशल के साथ कही गई है। कहानी के केन्द्र में एक कुलीन ग्रामीण परिवार की बहू है, जिसे उसका ससुर इस कारण सदा के लिए अपने घर से निकालित कर उसके मायके भेजने का निर्णय करता है कि उसने उसकी हवस का शिकार बनने से लगातार इंकार किया था।

चौधरी अपने बंधुआ जगेसर को, जो दलित है, बहू को उसके मायके ले जाने का आदेश देता है और जगेसर और निष्कासित बहू की यात्रा शुरू होती है उस मंजिल के लिए बहू के लेखे जो कहीं नहीं थी। सारी कहानी में मंथर गति से आगे बढ़ती जगेसर और बहू की यही यात्रा है। जितनी मंथर गति बहू की इस यात्रा में है, उतनी हम्भंथर गति कहानी की भी है। कोई घटना-क्रम नहीं, बस, बहू के घिसटते कदमों की यात्रा और उसी की त्रासदी त्रासद व्यंजनाओं को उभारती कहानी।

जगेसर बार-बार बहू से जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने का आग्रह करता है। उसे चौधरी के निर्देश के अनुसार शाम तक वापस लौटना था परन्तु बहू उसी मंथर गति से आगे बढ़ती है। जगेसर उसकी स्थिति के प्रति संवेदनशील होता है। उसके लिए पानी लाता है और उससे कुछ देर विश्राम करने को कहता है ताकि आगे यात्रा में गति आ सके। सारी यात्रा के दौर में बहू से संवाद करता है, जानना चाहता है कि आखिर मायके जा रही बहू क्यों इतनी उदास है परन्तु सारी यात्रा में बहू का मौन उसे परेशान करता है। विश्राम के बाद यात्रा फिर शुरू होती है और इस बार जगेसर के उकसाने पर बहू बोलती है और अपने अन्तस का सफा कुछ उसके सामने उड़ेल देती है। जगेसर विश्राम नहीं कर पाता कि बहू जो कुछ कह रही है वह वाकई सच है। बहू उसे विश्राम दिलाती है और कहती है कि वह किस नाते ससुराल से निष्कासित की गई है। जगेसर के सामने पहली बार अपने उस मालिक का चेहरा बेनकाब होता है जिसके कंधे पर उसने निरपराधों पर न जाने कितने जुलम किये थे। वह कांप उठता है और अपराध बोध से भर उठता है। वह बहू को मायके जाने की सलाह देता है परन्तु जिस जानवर के शिकोने से छूट कर वह ससुराल से बाहर आई थी वैसे ही एक जानवर उसका मामा उसके मायके में था, जिसने बचपन में ही उसे अपनी हवस का शिकार बनाया था। बहू मायके जाने से इंकार करती है और जगेसर से आग्रह करती है कि वह उसे वहीं रास्ते पर छोड़कर वापस लौट जाए। आदमी के वेश में औरत की देह के भूखे जानवरों की हवस का शिकार बनने से बेहतर है कि वह रास्ते के जंगली जानवरों की भेंट चढ़ जाये।

जगेसर के भीतर का मनुष्य अब तक जग उठा था। वह बहू को ऐसी हालत में निराश्रित छोड़ देने के लिए कतई राजी नहीं होता। वह निर्णय लेता है - कहता है - न बहू।

मैं लक्ष्मणा न हूं जो सीता कू बियाबान जंगल में अकेला छोड़ दूं। जगेसर के चेहरे पर आत्मविश्वास और संकल्प की दृढ़ता थी। वह बहू को चलने को कहता है। बहु उसके चेहरे पढ़कर बिना किसी जिज्ञासा के कि वह उसे कहां चलने को कह रहा है, आज्ञाकारीणी की तरह उसके पीछे देती है। कहानी इसी बिन्दु पर बिना कुछ कहे समाप्त हो जाती है, अपनी अनेक व्यंजना के साथ। कुछ न कहकर वह जैसे बहुत कुछ न कहकर वह जैसे बहुत कुछ व्यंतना के धरातल पर कह जाती है। यही कहानी की खूबी है।

'खानाबदोश' दलित कामगरो की कहानी है जो उनके जीवन - संघर्ष को उसके सारे जोखिमों के साथ उजागर करती है। ईंटें थापकर जीविका अर्जन करने वाली मानों टेकेदारों के सारे जोर-जुलम और हवस से अपने को बचाती हुई, पकी हुई लाल-लाल ईंटों को देखकर एक सपना अपने मन में पालती है, लाल-लाल ईंटों वाले अपने एक घर का सपना। वह उसके लिए अथक श्रम भी करती है परन्तु हमेशा की तरह उसका यह सपना टूट जाने की नियति ही पाता है।

संभावित जोखिमों से अपने को बचाने हेतु पति के साथ वह निकल पड़ती है अनिश्चित भाविष्य की एक अन्तहीन यात्रा में। उसे कसक है तो यह कि उसका सवर्ण साथी, जो किसी समय संकट में उसके साथ था, और जिसे उसने अपनी सारी आत्मीयता दी थी, निर्णायक क्षणों में उसका साथ नहीं देता। बिना किसी बड़बोलेपन के कहानी बड़ी शान्त लय में समाप्त होती है।

ये कहानियाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि के रचना संसार की बानगी भर हैं। इनसे गुजरते हुए हम जिन निष्कर्षों तक पहुंचते हैं, वे ओमप्रकाश वाल्मीकि के रचना संसार की बानगी भर हैं। इनसे गुजरते हुए हम जिन निष्कर्षों तक पहुंचते हैं, वे ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनात्मक प्रतिभा के अलावा विचार के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण आयाम भी उद्घाटित करते हैं

जो चल रहे दलित विमर्श और दलित साहित्य विमर्श में दूर तक हमारे मददगार हो सकते हैं।

हमारी सामाजिक संरचना में जरूर दलित और गैर-दलित का भेद रहा है परन्तु इस भेद के खिलाफ संघर्ष की भी परम्परा रही है और वह साक्षी परम्परा भी है। यह परम्परा कितनी भी क्षीण क्यों न रही हो, उसे बहाल रखने की और उसके दायरों को बढ़ाने की आवश्यकता है। यथास्थिति के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं होगा कि सामाजिक समता पर विश्वास रखने वाली ताकतें बंटें। दलित विमर्श में दुर्भाग्य से चाहे अनचाहे यही हो रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां इस पहलू के प्रति हमें सजग तो करती ही हैं, वे अनुभव के एक ऐसे संसार में भी हमें ले जाती हैं, जहां वर्ग, वर्ण, धर्म और सम्प्रदाय के भेदों से अलग हम आदमी और आदमीयत से मुखातिब होते हैं। उनकी 'अम्मा' कहानी ऐसी ही कहानी है। यहां अम्मा के रूप में जिस मां की छवि सामने लाई गई है वह अपनी दलित पहचान कर अतिक्रमण करते हुए मूल्यों, मान्यताओं और अपनी भाव-सम्पदा में बस माँ के रूप में हमारे सामने आई है। ममता और त्याग की जीवित हकीकत के रूप में। निहायत निश्छल और संवेदनशील मन का प्रतिरूप है अम्मा, जिसे किसी को भी माँ मानने से गर्व होगा।

समग्रतः ये कहानियां अपने रचनात्मक कौशल, संवेदना और शिल्प, हर आयाम पर दलित कहानियां होते हुए भी हिन्दी की यथार्थवादी कहानी-परम्परा की एक मजबूत कड़ी हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी दलित पहचान को बनाये रखें। चल रहे दलित विमर्श को इन कहानियों से बल मिले, वह सही लीकों पर आगे बढ़े, हम सहज ही ऐसी आशा रखते हैं।

#### संदर्भ ग्रन्थ

1. दलित साहित्य – ओमप्रकाश वाल्मीकि नमन प्रकाशन नई दिल्ली 1100002
2. प्रतिनिधि कहानियां – राजेन्द्र यादव राजकमल प्रकाशन नई दिल्लीए (प्रथम संस्करण 1997)
3. दलित विमर्श : शिव कुमार मिश्र – नमन प्रकाशन (नवीन शाहदरा) नई दिल्ली 110002
4. जयशंकर प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियां – डॉ. श्रीमती राजेश यादव, सजना प्रकाशन प्रथम संस्करण 2010 राजगढ़ रोड (पिलानी)
4. बीसवीं सदी की महिला कथाकारों की कहानियां – सुरेन्द्र तिवारी नमन प्रकाशन नई दिल्ली 110002

प्रथम संस्करण : 2010